卐 महासती 卐

भाग

7

२) रुपये

० લેખક ०

पं० वीरसेनविजयजी गणिवर्य

-: પ્રકાશક :-

लब्धिकृपा प्रकाशन समिति

कोल्हापुर

ब्राह्मी और सुन्दरी

तप जप शुद्ध शीयल का पालन करने वाला सर्व कर्म क्षय कर ब्राह्मी और सुन्दरी की तरह मोक्ष प्राप्त करता है ।

अयोध्या नगरी में नाभि कुलकरके पुत्र ऋषभ राजा राज्य करते थे । उनके सुमंगला और सुनंदा नामक दो पत्नियां थी । सुमंगला ने चौदह महा स्वप्नों से सूचित ऐसे एक पुत्र और पुत्री को जन्म दिया जिनका नाम भरत तथा ब्राह्मी रखा । सुनंदा ने बाहुबली और सुन्दरी को जन्म दिया ।

इन्द्र ने स्वयं भगवान का अभिषेक किया । तत्पश्चात् भगवान ने नीति धर्म का प्रवर्तन किया । सर्व व्यवहार प्रकाशित किया । भरत को १०० शिल्प सिखाये, ब्राह्मी को १८ लिपि सिखायी तथा सुन्दरी को गणित सिखायी ।

लाख पूर्व के अंत में प्रभू ने राज्याभिषेक भरत का कराया । बाहुबली आदि अन्य को भिन्न-भिन्न देश दिये । तत्पश्चात् सांवत्सरिक दान देकर

प्रभू ने दीक्षा ग्रहण की। अनुक्रम से कर्म क्षय कर वट-वृक्ष के नीचे प्रभू ने केवलज्ञान प्राप्त किया और देवों ने समवसरण की रचना की। प्रभू ने समवसरण में धर्मोपदेश सुनाया इस संसार सागर में प्राणियों को आधि व्याधि उपाधि तथा जन्म-जरा-मरण आदि बन्धन हैं। सुख लेश भी नहीं और दुःखों का पार नहीं। ऐसे मरुस्थल जैसे संसार में कौन बद्ध रहे? दुर्जन पुरुषों की तरह विषय अन्त में दुःखकर हैं और प्रेम है वह परिपक्व फल की तरह है। चतुर्गति संसार दुःख से भरा है इसलिये हे मनुष्य! आप सर्वथा मोक्ष के लिये प्रयत्न करें। यह मोक्ष भी सर्वविरति बिना दुष्प्राप्य है। अन्त में कहा—सर्व मोक्ष को प्राप्त कर दुःखों को तिलांजलि देवें।

इसप्रकार की देशना सुनकर भरत के पांचसौ पुत्र तथा सात सौ प्रपुत्रों ने चारित्र अंगीकार किया। भरत की अनुज्ञा से ब्राह्मी ने दीक्षा ग्रहण की। सुन्दरी को बाहुबली ने हां कही परन्तु भरतने दीक्षा की अनुज्ञा नहीं दी कारण भरत को स्वयं की पट्ट रानी बनानी थी। इसी कारण प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव प्रभू का प्रथम श्रावक भरत राजा तथा श्राविका सुन्दरी थी। भरत का पुत्र पुंडरीक उनका प्रथम गणधर था। तत्पश्चात् भरत

षट्खंड साधने के लिये निकला।

सुन्दरी ने आयंबिल तप प्रारम्भ किया। षट्-खंड साधकर नमि-विनमि की बहन को स्त्री-रत्न कर वापस आया और सुन्दरी को देखा तो ऐसी लगी जैसे कोई कमलिनी पर हिमपात हो और गल जाय, शुष्क केले के समान या दिन में जैसे चन्द्रकला फीकी दिखे ऐसी। लावण्य तो कहीं चला गया था, म्लान बनी शरीर में सिर्फ अस्थियाँ थी। खून और मांस तो सूख गया था। सुन्दरी को पहचान भी न सके। ऐसी देख कर भरत ने सेवकों से कहा—क्या पृथ्वी निर्बीजा बन गई है? क्या मेरे पास धन-संपत्ति नहीं है? क्या उसे मनः संतुष्ट भोजन नहीं मिलता? क्या रसोईदार रसोई नहीं बनाता? क्या उसे कोई व्याधि हुई है? ऐसी दशा क्यों हो गई है? हस्ती का स्थान है अपना घर जिसे खजूर, द्राक्ष, नारियल आदि स्वादिष्ट वस्तुएं प्राप्त नहीं होती। यह सभी सुनकर रसोईदार बोले–हे राजेश्वर! आपका घर तो कल्पवृक्ष के समान है, सभी उपलब्ध है लेकिन जब से आपने दीक्षा लेने को इन्कार किया है तब से वैरागी होकर साध्वी के समान आयंबिल तप कर रही है। एक भी विगय अति आग्रह करने पर भी नहीं लेती है। आयंबिल तप करते साठ हजार वर्ष हो गये।

यह सुनकर अति खिन्न बने भरत राजा ने कहा—हा हा ! धिक्कार है मुझे, विषयासक्त से उन्मत्त होकर, हिताहित से विवेक विहीन होकर, राज्य संपत्ति में मुग्ध बना हूँ। जब उत्तम प्राणी इसी शरीर से मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त करता है, जब भोगासक्त इसी शरीर से नरकवास पाता है, सर्वदा आधि-व्याधि, उपाधि मल-मूत्र प्रस्वेद से युक्त यह शरीर है। यह तो लहसुन के कंद जैसा है, सुगंधित करना अशक्य है। इसीलिये धन्य है मेरी बहन को, शरीर को सार्थक और सफल कर रही है, ऐसी महान् दीर्घ तपश्चर्या में जिसका चित्त तन्मय बन गया है, बहन ! जा तू चारित्र स्वीकार कर।

इतने में श्री ऋषभदेव प्रभू विहार से पृथ्वी को पवित्रित करने उद्यान में समवसरित हुए। उद्यान पालक ने जाकर भरत राजा को बधाई दी। तो उद्यान पालक को दान देकर खुशी कर दिया। भरत महाराजा सुन्दरी के साथ वन्दन करने तथा धर्मोपदेश श्रवण करने हेतु गये। धर्मोपदेश के बाद भरत महाराजा भगवंत से कहने लगे—मैंने सुन्दरी को दीक्षा लेने से इन्कार किया जिससे महापातक बंध हुआ। बहु-आरंभ करने से मैं पापी बना हूं। इसीप्रकार कहते कहते सुन्दरी से क्षमा-याचना को। इसी समय सुन्दरी ने कहा—मेरा इतना समय बिना

दीक्षा निष्फल गया वह भी कर्म का विकार है इसीप्रकार बोलते हुए भरत की आज्ञा प्राप्त कर दीक्षा अंगीकार की। तत्पश्चात् विशुद्ध चारित्र पालने लगी। ब्राह्मी भी दीक्षा अंगीकार करके चारित्र पालन कर ब्राह्मी और सुन्दरी दोनों ने विविध प्रकार की तपस्या कर निरवद्य चारित्र पालन कर केवलज्ञान प्राप्त किया। पृथ्वी की पीठ पर भव्य जीवों को बोध देकर बहुकाल समय व्यतीत कर अष्टापद पर्वत पर आयु क्षय कर मुक्तिपद को प्राप्त किया।

अपना घर

घरेलू प्रशिक्षण से व्यवहार, मन और चरित्र सभी प्रभावित होते हैं। घर में ही हृदय खुलता है, आदतें पड़ती हैं, बुद्धि जागृत होती है और सांचे में चरित्र ढलता है। घर ही वह स्रोत है जहां से सिद्धान्त और उपदेश प्रकट होते हैं, जो समाज का निर्माण करते हैं। बच्चों के मन में जो छोटे-छोटे संस्कार या विचार-बीज बो दिये जाते हैं, वे ही आगे चलकर तरुवर के रूप में प्रकट होते हैं। प्राथमिक विद्यालयों से ही राष्ट्र अंकुरित है। बच्चा जब संसार में आता है, असहाय होता है। उसे अपने पोषण तथा संस्कार के लिए पूर्णत: घर के लोगों पर निर्भर या आश्रित रहना पड़ता है। जन्म लेते ही पहले श्वास के साथ बालक का प्रशिक्षण आरम्भ हो जाता है।

सुज्झइ जइ सुचरणो

शुद्ध होना है क्या ? क्या शुद्ध करना है ?

मलिन आत्मा को शुद्ध करना है ? मलिन आत्मा का दर्शन बेचैनी पैदा करता है क्या ? आत्मा की मलिनता कांटे की भांति चुभती है क्या ?

तो आपका व्यवहार सदाचारमय बना दो। आप सच्च-रित्र बन जाओ। दुराचारों का त्याग कर दो। सच्चरित्री आत्मा शुद्ध होती है। शुद्ध आत्मा का सुख अनन्त-अपार होता है।

अशुद्ध आत्मा ज्यों ज्यों शुद्ध बनती जायेगी त्यों त्यों वैष-यिक सुखों की आकांक्षायें कम होती जायेंगी। आत्मा में से शुद्ध सुख प्रकट होता जायेगा।

सच्चरित्री ही शुद्ध होता है, यह बात मत भूलो। श्रद्धा-वान् ज्ञानवान् ही सच्चरित्र बन सकता है। श्रद्धा को निर्मल करते चलो, ज्ञान का प्रकाश बढ़ाते चलो, आपकी सदाचार प्रियता बढ़ती रहेगी।

रेवती

साधु को शुभ भाव सहित औषधादि देने वाले जीव रेवती श्राविका की तरह अशुभ कर्म का क्षय करते हैं।

एक बार श्री भगवान महावीर विहार करते-करते श्रावस्ती नगरी के उद्यान में आकर समवसरित हुए। अनेक राजा प्रमुख, अनेक भव्य आत्माएं देशना सुनने आयीं। प्रभू ने उपदेश में फरमाया कि—

पुण्यवंत जीवों को विमान में वास करना सुलभ है, चक्रवर्ती को ऋद्धि पाना सुलभ है किन्तु जिनेन्द्र प्रभु का शासन और सम्यक्त्व पाना अति दुर्लभ है साथमें पंचेन्द्रिय की पटुता, मनुष्यता, आर्यदेश, उत्तम कुल, साधु समागम, धर्म का श्रवण, श्रद्धा, निरोगी काया और चारित्र दुर्लभ है।

जब आयुष्य क्षय होता है तो शरीर के सर्व अवयव शिथिल होते हैं, शरीर को छोड़ते समय अति दुःखित होता है। मनुष्य के वही दिन पक्ष, मास, साल

सफल हैं जिसमें मूलगुण और उत्तर गुणों के रूप विरति का पालन करते हैं।

प्रभू की संवेग-निर्वेद जनित देशना से अनेक भव्यात्माओं ने सम्यक्त्व के मूल सहित बारह व्रतों को ग्रहण किया। इसी समय गोशालक वहाँ आया जो गोशालक पहले प्रभू के पास सेवक भाव से रहा और तेजोलेश्या को सीख ली और उसी तेजोलेश्या को प्रभू के ऊपर गोशालक ने छोड़ी। तेजोलेश्या के बीच सुनक्षत्र मुनि आये तो वे जल गये लेकिन प्रभू की परम भक्ति से अच्युत देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुए। इसी समय प्रभू को तेजोलेश्या का असर हुआ और प्रभु के मास पर्यंत अतिसार का रोग हुआ। किसी वैद्य ने प्रभू का रोग देखा और कहा—परमेश्वर का अतिसार रोग दूर करने वाला कटु औषध बीजारोपाक प्राप्त हो जाय तो रोग शांत हो जायेगा। यह बीजारोपाक रेवती श्राविका के वहां प्राप्त होगा। सिंहमुनि प्रभुवर की भक्ति निमित्त रेवती के वहां बहोरने पधारे। रेवती ने तीन भुवन के गुरु के रोग की शांति के लिये अत्यन्त भक्ति भाव पूर्वक बीजारोपाक बहोराया ऐसी उनकी भक्ति और भाव था जिससे रेवती ने तीर्थंकर नामकर्म का अर्जन किया।

कहा है कि—ज्ञानदान से ज्ञानी, अभयदान से निर्भय, अन्नदान से सुखी, औषधदान से निरोगी होते हैं। दान से प्राणीगण वश होता है। वैरियों का नाश होता है। परजन, बंधुजन बन जाता है, निरन्तर दान से अयोग्य भी योग्य बन जाता है, खारे समुद्र में मेघ-वृष्टि भी उत्तम बनती है।

इस औषधि से प्रभू का रोग दूर हो गया। औषधिदान से रेवती ने जो तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया था जिसके प्रभाव से भावी चौवीशी में समाधि नामक सत्तरहवाँ तीर्थंकर होगो।

धर्म में तत्पर लोग उत्तम प्रकार के औषधदान से दानो रेवती के समान जिनेश्वर पद प्राप्त करते हैं।

संयम का अर्थ

सं+यम=संयम। 'सं' का अर्थ है अच्छी तरह भली भांति, समता व विवेकपूर्वक तथा 'यम' का अर्थ है मन, वचन व काया पर नियंत्रण। अर्थात विवेकपूर्वक समता सहित यम का पालन संयम है। ऐसे संयम में प्रवृत्त, जागृत साधक को ही मुनि कहा है– 'सुत्ता अमुणी, मुणिणो सया जागरति।" अर्थात् सोने वाले अमुनि और मुनि सदा जागृत होते हैं। संयम का उदात्त अर्थ है—अपने तन, मन, इन्द्रियां व कामनाओं पर अपना आधिपत्य स्थापित करना, उन पर विजय प्राप्त करना।

निरून्ध्यादयतं वचः

❀ मानव जीवन के सभी व्यवहारों में मनुष्य की वाणी अपना विशेष महत्व रखती है।

❀ अपने को और दूसरों को अशान्ति हो वैसी वाणी, वैसे वचन नहीं बोलो।

❀ वाणी में कर्कशता नहीं चाहिए, मधुरता चाहिए। वाणी अस्पष्ट और संदिग्ध नहीं चाहिए, परन्तु प्राञ्जल चाहिए, सुस्पष्ट चाहिए।

❀ वाणी में अभिमान की अभिव्यक्ति नहीं होनी चाहिये, मृदुता और नम्रता की अभिव्यक्ति होनी चाहिए।

❀ वाणी में मृषावाद नहीं चाहिये, सच्चाई की प्रतीति चाहिये। दूसरों के हृदय में विश्वास पैदा करने वाली वाणी चाहिए।

❀ असत्य, अभद्र, कर्कश, क्लेशजनक अस्पष्ट वचन बोलना छोड़ दो। इससे आपका जीवन-व्यवहार शुद्ध बनेगा। समाज में, गांव-नगर में आप श्रद्धेय बनेंगे। आपका चित्त प्रसन्न बना रहेगा।

कुन्ती

निरन्तर सत्कर्म में धर्म में तत्पर ऐसे भव्य जीव उदार चित्त वाले कुन्ती के समान तत्क्षण मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

मथुरा नगरी में भोजकवृष्णि राजा राज्य करता था उसका उग्रसेन नामक पुत्र था इसी समय शोर्यपुर नगर में अंधकवृष्णि राजा राज्य करता था उसकी रानी थी सुभद्रा । सुभद्रा ने अनुक्रम से दश पुत्रों को जन्म दिया । उन दश पुत्रों को दशार्ह भी कहते थे, उन दश पुत्रों का नाम—समुद्रविजय, अक्षोभ, स्तिमित, सागर, हिमवान, अचल, धरण, पूरण, अभिचंद्र और वसुदेव था । वे लक्षणों से गुणों से समान थे व पराक्रमी थे, उन दश भाईयों के दो बहने भी थी जो रीति और प्रीति को पराजय करने वाली कुन्ती और माद्री नाम वाली थी ।

एक दिन हस्तिनापुर का पांडु राजा वन में शिकार हेतु निकला था, गले में मल्लिका पुष्प की

माला थी उसने माकंद वृक्ष को देखा । देखते ही मद-युक्त हो गया । नारंगी के वृक्ष देखकर आनंदित बन गया, कामदेव के दीपक समान चंपक वृक्ष को देखकर अति हर्षित हुआ तथा बकुल वृक्ष के पुष्पों की कलियों से आकुल ऐसा अशोक वृक्ष को देखकर शोक रहित बन गया । फिरता-फिरता आम्र वृक्ष के पास आया तब उसने एक पुरुष को देखा जिसने स्लेट पर एक रूप आलेखित किया था, लेकिन उसने वह स्लेट यह आ गया इसलिये ढक दी तभी पांडु ने पूछा क्या छिपा दिया, क्या है ? पुरुष ने स्लेट दिखाई तो स्लेट पर एक अति सुन्दर स्त्री का चित्र देखकर मस्तक धुनाते हुए पूछने लगा अहो ! कैसा सुन्दर सौन्दर्य है ? कैसा मधुर लावण्य है ? कैसी कामणगारी काया की कांति है ? उसके मुख की कांति से पद्म दूर सरोवर में चला गया । चन्द्र कलंकित बन दिन में तो आता ही नहीं । अहाहा ! क्या कमललता के पल्लव समान हस्त हैं । पुष्प समान दांत हैं । सुगंध-मय बास है कोठफल के समान कठिन स्तन युगल हैं । अहाहा ! ऐसी स्त्री का जो स्वामी बनेगा वह भाग्य-शाली होगा ।

इसीप्रकार सोचते-सोचते पांडु ने पूछा—यह चित्र कौन स्त्री का है ? यह चित्र शोर्यपुर के राजा

अंधकवृष्णि की पुत्री कुन्ती का है। साथ में यह भी बताया कि राजकुमारी चौसठ कला में निपुण है और यौवन वृक्ष की मंजरी के समान है लेकिन क्या कहूं इनका पिता बहुत ही दुःखित है, चिन्ताशील है। पुत्री के अनुपमरूप वर मिल नहीं रहा है। राजा उस पुरुष को बहुत ही धन देकर चित्र ले अपने नगर में चला गया। वन में परिभ्रमण करता रहता था और उस स्त्री का चित्र देखता रहता था।

अकस्मात् जंगल में चंपक वृक्ष की धरा में एक पुरुष को बंधा हुआ देखा, उसके शरीर पर लोह के बाण लगे हुए थे। वेदना से मूर्छित बना पड़ा था। करुणा तत्पर राजा ने सोचा कौन होगा? इतने में एक खड्ग देखा। खड्ग से बंधन काट दिये जिससे वह मुक्त हो गया। पास में दो औषधिवलय देखा। एक से शल्य-रहित बनाया, दूसरा औषधिवलय से मूल रूप प्रकट किया। बाद में राजा ने पूछा तू कौन है?

मैं वैताढ्य पर्वत पर रहने वाला अनिलगति नामक विद्याधर हूं और मेरी प्रिया का हरण अशनीवान विद्याधर ने किया था। मैं उनको पकड़ने दौड़ा तो मेरी दशा ऐसी की लेकिन आप जैसे निष्कारण उपकारी आये

ओर मेरा कुछ भाग्य जोरदार था, जिससे दुःख मुक्त हुआ। मुझ पर आपने बहुत ही उपकार किया है अतः आप बोलें आपका क्या इच्छित करूं ? प्रत्युपकार क्या करूं ?

पाँडु राजा ने कहा—जिनेश्वर देव की कृपा से मेरे पास सब कुछ है, कोई आवश्यकता नहीं है। तभी विद्याधर ने कहा—यह मुद्रिका तथा कामुका नामक दो औषधि स्वीकारें। कामुका के प्रभाव से आप इच्छित स्थान जाने को शक्तिमान बनोगे। मुद्रिका के योग से आप जहां स्मरण करोगे तो आपका इच्छित कर दूंगा। इसीप्रकार बताकर पांडुराजा को मुद्रिका तथा दो औषधियां देकर अपने स्थान पर चला गया। पांडु भी अपने चित्त में मनन करता हुआ अपने नगर में चला गया।

शोर्यपुर में वह चित्रकार, पांडु राजा का चित्र पट्ट पर चित्रित कर पांडु के रूप का वर्णन करते फिर रहा था। अंधकवृष्णि चित्र देखकर हर्षित हुआ लेकिन कुन्ती को देने का मन नहीं हुआ। कुन्ती ने सोचा अभी मेरा कोई पति बनेगा नहीं। ऐसा सोचकर गले में पाश डालकर कुल देवी को कहने लगी—

हे माता ! मैं अंजली जोड़कर आपके समक्ष प्रार्थना करती हूं कि मुझे इस भव में तो कोई पति नहीं मिला लेकिन आगत भव में पांडु राजा मिले। इसी प्रकार कहकर प्राण त्याग करने लगी। इतने में मुद्रिका के प्रभाव से पाँडु राजा वहां आकर उपस्थित हुआ और गले के पास छेद कर दिया और कहा—देख तेरे साथ पांडु राजा खड़े हैं। प्राणत्याग मत कर। कुन्ती ने उसे पहचान लिया तथा दासियों ने तथा सखो वर्ग ने मिल कर कुन्ती का पांडु राजा के साथ गंधर्व लग्न कर दिया। वहां रहते हुए कुन्ती ने ऋतु स्नान नजदीक में ही किया था जिससे पांडु के साथ विषय भोग भोगते गर्भ रह गया। पांडु को यह बात कह दी, स्वतः को कृत कृत्य समझते हुये पांडु मुद्रा औषधि से स्वयं के नगर में वापस आ गया तथा कुन्ती अपने स्थान पर वापस आ गयी।

क्रम से धात्रिओं ने बात गुप्त रखी। कुन्ती ने एक पुत्र को जन्म दिया। वह पुत्र को मंजूषा में रखकर मध्यरात्रि में वह मंजूषा गंगा नदी में छोड़ दी और वह मंजूषा हस्तिनागपुर में सुत सारथी को मिली, वह मंजूषा घर पर जाकर खोली तो एक बालक देखा जिसने अपना

हाथ कान पर रखा था अतः उस लड़के का नाम कर्ण रखा ।

इसी समय सारथी की स्त्री ने अपने पति से कहा—आप सभी को कहना मेरी पत्नि गूढ़गर्भा है अतः उसने पुत्र को जन्म दिया है ।

सारथी के यहां कर्ण धीरे-धीरे बड़ा होता गया । अंधकवृष्णि भूपति ने जब कुंती का मनोभाव जान लिया कि वह पांडु पर आसक्त है । अतः कुन्ती का पांडु के साथ अन्धकवृष्णि ने लग्न कर दिया । मद्रक राजा ने अपनी पुत्री माद्रि का पांडु के साथ लग्न कर दिया । अनेक देश के अधिपति ऐसे सुबल राजा ने अपनी गंधारी आदि आठ पुत्रियों का लग्न धृतराष्ट्र के साथ किया ।

कुन्ती ने एक स्वप्न में मेरुपर्वत, क्षीरसमुद्र, सूर्य और चन्द्रमा को देखा तब से कुन्ती धर्म के विषय में अति तत्पर बनी । शुभ लग्न में एक पुत्र को जन्म दिया । उस पुत्र का जन्मोत्सव कर युधिष्ठर नाम स्थापन किया । गंधारी ने दुर्योधन प्रमुख सौ पुत्रों को जन्म दिया । कुन्ती के भी वायुदेव सूचित भीम नामक पुत्र हुआ । सूर्यदेव सूचित अर्जुन नामक पुत्र प्रसूत हुआ । माद्रि ने

नकुल और सहदेव नामक पुत्र-रत्नों को जन्म दिया।

माता कुन्ती ने अपने पुत्र युधिष्ठर के पास नाशक नामके नगर में चन्द्रप्रभ स्वामि का चन्द्ररत्नमय प्रासाद बनाया। क्रम से पांडुराजा युधिष्ठर को राज्य सुपुर्द कर, दीक्षा ग्रहण कर स्वर्ग में गये। तत्पश्चात् युधिष्ठर अपनी माता के साथ शत्रुंजयगिरि की विस्तार सह यात्रा करने लगा और उद्धार करवाया। नेमिनाथ प्रभू के पास कुन्ती ने अपने पुत्रों के साथ जैन धर्म अंगीकार किया और शुद्ध रीति से पालने लगे।

पांडवों को वनवास कैसे हुआ? किस तरह से राज्य प्राप्त किया। विस्तार के भय से यहां प्रस्तुत नहीं करते।

पांचों पांडवों ने अपने-अपने पुत्रों को राज्य सौंप कर अपने माता-पिताओं सहित गुरु के पास दीक्षा अंगीकार की, तीव्र तपस्या कर, घोर पापों को क्षयकर सर्व ने मुक्तिपद को प्राप्त किया।

आत्मानुरूप : कर्तव्य : सारथिर्हि महारथ :

❀ किसी भी कार्य की सिद्धि करनी है, सफलता प्राप्त करनी है तो सुयोग्य साथी होना अति आवश्यक है ।

❀ महापुरुष, पराक्रमी पुरुष आत्मानुरूप साथी का वरण करते हैं । अर्जुन ने श्रीकृष्ण का वरण किया था न ? श्रीराम के साथी बने रहे थे श्री लक्ष्मणजी !

❀ अध्यात्म के मार्ग पर चलते रहने के लिये भी सुयोग्य साथी आवश्यक है । एकत्व की साधना में सफलता प्राप्त होने के पश्चात् साथी नहीं चाहिए, परन्तु इसके पूर्व, प्रारम्भिक अवस्था में साथी चाहिए ही । वो साथी अपने अनुरूप होना चाहिए । यानी उसमें समान अभिरुचि और कार्यदक्षता होनी चाहिए । निष्ठा और आन्तर-प्रीति होनी चाहिए ।

शिवा सती

सम्यक् प्रकार से शुद्ध रीति से शीयल पालने वाले शिवा सती की तरह शीघ्र ही शाश्वत सुख प्राप्त करते हैं।

उज्जयिनी नगरी में चंडप्रद्योत राजा राज्य करता था। न्यायनिष्ठ था। एक दिन राज्य सभा में बैठा था। इसो समय एक दूत ने आकर करबद्ध होकर नमस्कार किया। राजा ने पूछा—आप कौन हैं? और किसलिये आये हो? मैं विशाला नगरी में चेटक राजा है उनका दूत हूं और राजा ने आपसे एक विशिष्ट समाचार भेजा है कि मेरे शिवा नामक पुत्री जो चौसठ कला में कुशल है, रूप भी अनुपम है। उसका आपके साथ लग्न करने की इच्छा है। आप स्वीकार करते हो तो अति उत्तम है। चंडप्रद्योत ने स्वीकृति दे दी और शिवा का लग्न उमंग के साथ हो गया।

शिवारानी ने एक बार प्रभू महावीर की सुधा स्निग्धा देशना सुनकर धर्म को स्वीकार किया। शीयल-वंती थी।

एक बार एक देव ने शीयल से विचलित करने का प्रयास किया लेकिन शिवा महासतीजी शीयल पालने में दृढ़ रही ।

नगरी में नित्य अग्नि का उपद्रव रहता था । रात-दिन उपद्रव चलता रहता था । कोई उपाय सफल नहीं होता था । एक दिन राजा अति प्रयास कर बुद्धि निधान अभयकुमार को लाये और अग्नि शमन कैसे होवे, उपद्रव शांत कैसे होवे उसका उपाय पूछा अभयकुमार ने कहा कोई महा सती शीयलवंती यहां पर आकर अपने हाथ मे नीर का सिंचन प्रत्येक घर पर करे तो अग्नि की शांति हो जाय । अनेक स्त्रियां आयी और नीर का सिंचन करने लगी लेकिन कुछ नहीं हुआ । अंत में शिवा महासती ने अपने हाथ से जल छांटा कि अग्नि शांत हो गई । सभी लोगों ने शिवा महासती की जय-जयकार कर पूरे आकाश को भर दिया ।

सभी बोलने लगे जो पुरुष पर स्त्रियों के रूप को देखकरभी वृषभ समान धीर होकर शीयल को पालता है वह क्यों वंदनीय न होवे । विशेष तो क्या कहें । देव-दानव, गंधर्व, यक्ष-राक्षस और किन्नर जैसे दुष्कर कार्य करने वाले भी ब्रह्मचारी को नमस्कार करते हैं । शीयल की तो क्या अपार महिमा है कुल की उन्नति करता है,

परम भूषण रूप है । कभी नाश नहीं होने वाला आश्चर्यंकारी, पवित्र, सद्गतिदायक, दुर्गतिनाशक, यशस्कर, मोक्षप्राप्तक, कल्पवृक्ष समान शीयल व्रत है ।

शिवा महासती ने तत्पश्चात् प्रभू महावीर स्वामीजी के पास चरित्र स्वीकार कर विविध तपश्चर्या द्वारा कर्मक्षय कर मोक्ष प्राप्त किया ।

हंसना मना है

एक व्यक्ति बहुत तेज कार चला रहा था, कि उसकी कार टकरा गई । और वह बेहोश हो गया । जब उसे होश आया तो उसने पूछा—

"मैं कहां हूं" ?

"कमरा नं० पच्चीस में" ?

"अस्पताल के या जेल के" ?

अप्पसक्खिओ धम्मो

❀ 'मेरे जीवन में धर्म है या नहीं ? मैंने धर्मतत्त्व पाया है या नहीं,' इस बात का निर्णय दूसरे लोगों से नहीं करवाना है। कोई कह दे कि 'आप धार्मिक हो, इससे निर्णय नहीं करना कि 'मैं धार्मिक हूं'। कोई कह दे कि 'आपमें धर्म नहीं है।' इससे मान लेना नहीं कि 'मैं धार्मिक नहीं हूं'।

❀ आप आत्मसाक्षी से निर्णय करें कि 'मेरे में धर्म है या नहीं ? मैं धर्ममार्ग पर चल रहा हूं या नहीं ?

❀ आत्मसाक्षी से आप तभी सोच सकते हो जब आपके पास कुछ धर्मग्रन्थों का ज्ञान हो। उस ज्ञान के माध्यम से आप सोचें कि 'मैं धर्ममार्ग पर हूं या नहीं ?' लोग कुछ भी कहें, आप लोगों की बातें सुनकर धर्म के विषय में कभी भी निर्णय नहीं करें। लोग तो मात्र आपका बाह्य व्यवहार देखकर ही निर्णय देंगे। धर्म का सम्बन्ध मात्र बाह्य व्यवहार से नहीं है आंतर परिणति से धर्म का प्रगाढ़ संबंध है। आन्तर परिणति का निर्णय आत्मसाक्षी से होता है।

जयंति

चन्द्रोत्तरायण नामक चैत्य से मनोहर ऐसी कोशांबी नगरी में सहस्रानिक राजा के सुपुत्र शतानिक राजा थे और उनकी रानी थी मृगावती। उनका पुत्र था उदायन, जो चेटक राजा की पुत्री का पुत्र था और जयंति का भतीजा था।

जयंति सहस्रानिक राजा की पुत्री थी, शतानिक राजा की बहन थी उदायन राजा की भुआ थी, रानी मृगावती की ननद थी। भगवान महावीर स्वामी की प्रथम शैय्यातरी थी, जीवाजीवादि नवतत्वों की ज्ञाता थी, शरीर से सुकोमल थी।

कोशांबी नगरी में महावीर स्वामी समवसरित हुये, बारह प्रकार की पर्षदा प्रभु महावीर की सेवा में निमग्न थी। प्रभु के आगमन की बात सुनकर प्रमुदित बने हुये उदायन राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर आदेश दिया कि जिसप्रकार कुणिक राजा ने प्रभु महावीर के आगमन पर चंपानगरी को अलंकृत की थी उसी

प्रकार कोशांबी नगरी को अलंकृत कर देना और नगरी को अलंकृत कर दिया।

प्रभु महावीर के आगमन के समाचार से अति हर्षित हुई श्रमणोपासिका जयंति अपनी भोजाई मृगावती के पास गई और कहने लगी—

हे देवानुप्रिये! चतुर्विध संघरूपी तीर्थ की आदि करने वाले, सर्ववस्तु के ज्ञाता, जिनकी दृष्टि के प्रभाव से धर्मचक्र चलता था, वैसे महावीर स्वामि चन्द्रोत्तरायण नामक चैत्य में समवसरित हुए थे।

हे देवानुप्रिये! ऐसे भगवंत अरिहंत का नाम गोत्र का श्रवण ही महाफल को देने वाला है। ऐसे प्रभु के सन्मुख जाना, वंदन करना, नमस्कार करना प्रश्नादिक पूछना और सेवा करना वह तो बहुत फल देने वाले होंगे इसमें क्या आश्चर्य! ऐसे प्रभू के वचन सुनने से तो कितना लाभ प्राप्त होगा?

हे देवानुप्रिये! हम जाकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन करें, नमस्कार करें, ये इस भव और पर भव में हित करने वाले, शुभानुबंध करने वाले हैं। जयंति का इसप्रकार का वचन सुनकर उल्लसित बनी हुई मृगावती रानी ने अपने कोटुम्बिक को बुलाकर कहा

धार्मिक रथ को सजा कर जल्दी से लाओ। इतने में मृगावती तथा जयंति स्नान और बलिकर्म कर वस्त्रों से शरीर अलंकृत कर कुब्जादासी को साथ में लेकर अन्त: पुर के बाहर उपस्थान शाला में जहाँ धार्मिक रथ खड़ा था उसमें आकर जयंति के साथ मृगावती रानी बैठ गई, तत्पश्चात् उद्यान में आकर रथ में से उतरकर परिवार के साथ प्रभू की सेवा में उपस्थित होकर वंदना कर उदायन राजा, मृगावती रानी, जयंति आदि बारह पर्षदा के सम्मुख धर्मदेशना सुनने लगे।

धर्म देशना के बाद उदायन राजा, मृगावती रानी आदि सभी अपने-अपने स्थान में गये। जयंति जो तत्वों की जानकार थी वह प्रभू को नमस्कार कर पूछने लगी।

जयंति—भगवन्! सोना अच्छा या जागना?

महावीर—जयन्ति! कुछ जीवों का सोना अच्छा है और कुछ जीवों का जागना।

जयंति—यह कैसे?

महावीर—जो जीव अधर्मी है, अधर्मानुग है, अधर्मिष्ठ है, अधर्मरस्यायी है, अधर्म प्रलोकी है, अधर्म प्ररज्जन है, अधर्म समाचार है, अधर्म वृत्ति-

युक्त है वे सोते रहें यह अच्छा है, क्योंकि वे सोते रहेंगे तो अनेक जीवों को पीड़ा नहीं होगी। इसप्रकार वे स्वपर और उभय को अधार्मिक क्रिया में नहीं लगावेंगे अतएव उनका सोना अच्छा है। जो जीव धार्मिक है धर्मानुग है यावत् धार्मिक वृत्ति वाले हैं उनका जागना अच्छा है, क्योंकि वे अनेक जीवों को सुख देते हैं, स्वपर और उभय को धार्मिक कार्य में लगाते हैं अतएव उनका जागना अच्छा है।

जयंति—भगवन्! बलवान होना अच्छा या निर्बल?

महावीर—जयंति! कुछ जीवों का बलवान होना अच्छा है और कुछ जीवों का निर्बल होना अच्छा है।

जयंति—यह कैसे?

महावीर—जो जीव अधार्मिक है यावत् अधार्मिक वृत्ति वाले हैं उनका निर्बल होना अच्छा है। क्यों कि यदि वे बलवान होंगे तो अनेक जीवों को कष्ट देंगे। जो जीव धार्मिक है यावत् धार्मिक वृत्ति वाले हैं उनका बलवान होना अच्छा है क्योंकि वे बलवान होने से अधिक जीवों को

सुख देंगे। भगवती सूत्र १२-२-४४३

जयंति—हे भगवन् जीव उद्यमी अच्छा या आलसी ?

महावीर—कुछ एक जीव उद्यमी अच्छे और कुछ एक जीव आलसी अच्छे ?

जयंति—हे भगवन्! आप ऐसा क्यों फरमाते हो कितनेक जीव उद्यमी अच्छे और कितनेक जीव निरुद्यमी अच्छे।

भगवंत—पापी जीव आलसी अच्छा, धर्मी जीव उद्यमी अच्छा। कारण कि जो वह उद्यमी हो तो बहुत आचार्यों, उपाध्याय, स्थविर तपस्वी, ग्लान शिष्यों के कुल को, गण की, संघ की और साधर्मिक की वैयावृत्य करने में, अपने आत्मा में, परमात्मा में तथा उभय में जोड़ने वाला होता है इसलिये कितनेक जीव उद्यमी अच्छे और कितनेक जीव आलसी अच्छे।

जयंति—हे भगवन ! श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय के वश हुआ जीव कौनसे-कौनसे कर्म बांधते हैं ?

भगवंत—हे जयंति ! श्रोत्रेन्द्रियादिक वश बना जीव सात आगकर्म की प्रकृति को बांधते हैं, यावत्

अनंतकाल संसार परिभ्रमण करते हैं इसी प्रमाण क्रोध को वश हुआ समझना ।

जयंति—जीव किस रीति से शीघ्र भारीकर्मी होता है ?

भगवन्—प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशून्य, रति-अरति, पर-परिवाद, मायामृषावाद, मिथ्यात्वशल्य यह अठारह पाप स्थानकों का सेवन कर शीघ्र भारी कर्मी होता है ।

जयंति—जीवों को भव सिद्धिपणा स्वभाव से है या परिणाम से ?

भगवन्—जीव स्वभाव से ही है लेकिन परिणाम से नहीं ।

जयंति—सर्व भव सिद्धिया जीव सिद्धि को पायेगा ?

भगवन्—हां ! सर्व भव सिद्धिया जीव सिद्धि पायेगा ।

जयंति—यदि सर्व भवसिद्धिया जीव सिद्ध हो जायेगा तो आगे जाकर लोक भवसिद्धिया रहित हो जायेगा ?

भगवन्—यह बात होने वाली नहीं है ।

जयंति—क्यों नहीं बनने वाली होगी ?

भगवन् — जिसप्रकार भविष्यकाल समय-समय से वर्तमान काल बनेगा तो भी भविष्य काल अनंत होने से कोई भी काल भविष्यकाल रहित नहीं होगा अथवा वो सर्व आकाश प्रदेश की कल्पनासे परमाणु पुद्गल जितना सूक्ष्म टुकड़ा कर एक-एक प्रदेश की श्रेणी बनाइये और परमाणु पुद्गल के खंड खंड को एक-एक कर निकालें तो भी परमाणु पुद्गल की श्रेणी अनादि अनंत होने से अनंत उत्सर्पिणीअवसर्पिणी काल से भी पूर्ण नहीं होगी इसीप्रकार लोक भी अनंत उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल भी भवसिद्धिया जीव रहित नहीं होगा।

इसीप्रकार जयंति श्रमणोपासिका प्रभू महावीर के पास से जिज्ञासा तृप्त होने से हर्षित हुई। तत्पश्चात् देवानंदा की तरह दीक्षा ग्रहण कर सर्व दुःखों का नाशकर मुक्ति गति को प्राप्त किया।

टी० वी० और रेडियो

एक बार एक गांव के स्कूल में एक निरीक्षक निरीक्षण करने के लिये आये। कक्षाओं में राउण्ड लगाने के बाद वह कक्षा ५ में पहुंचे और विद्यार्थियों से पूछा।

प्रश्न—१. रेडियो किसे कहते हैं ?

प्रश्न—२. टी० वी० किसे कहते हैं ?

उत्तर-१. एक विद्यार्थी ने जवाब दिया कि जो छोटा होता है उसे रेडियो कहते हैं।

उत्तर-२. टी० वी० उसे कहते हैं जो बड़ा होता है तथा उसमें पिक्चर भी देखी जाती है।

इस तरह के जवाब सुनकर निरीक्षणकर्ता सन्तुष्ट नहीं हुये। उन्होंने यही प्रश्न दूसरे विद्यार्थी से किये तथा कहा कि पूरी तरह समझाओ ढंग से। पिन्टु अपनी कक्षा में और लड़कों की अपेक्षा होशियार था उसने खड़े होकर जवाब देना आरंभ किया।

सर ! एक दिन हमारे पड़ोस में घर के अन्दर झगड़ा हो रहा था वह झगड़ा हमारे घर तक सुनाई आ रहा था। बस समझ लीजिये रेडियो था वह। तथा जब झगड़ा बढ़ा और घर से बाहर निकलकर लड़ने लगे कुछ देर बाद, तो आसानी से अपने घर से देखा जा सकता था तो समझ लीजिये टी०वी० देखने को मिल गया। इस पर कक्षा महोदय, निरीक्षक महोदय को हंसी आ गई साथ में सभी विद्यार्थी भी हंस पड़े।

देवकी

जो जीव निरन्तर चन्द्रमा समान उज्ज्वल शील का पालन करता है वह देवकी को तरह प्रसिद्धि प्राप्तकर परम पद को प्राप्त करता है।

एक दिन समुद्रविजय राजा से अपमानित होकर वासुदेव स्वयं विदेश में भ्रमण करने लगे। अनेक देशों से अनेक राजकुमारिकाओं के साथ पाणिग्रहण भी करते जाते थे। क्रम से एक दिन मृतिकावती नगरी में पधारे। वहां कंस का पितराई चाचा देवक न्याय मार्ग से राज्य का परिवहन करता था। उनकी देवकी नामक एक पुत्री थी। वह कलाओं में प्रवीण तथा पंडित थी। वसुदेव के पराक्रम, परोपकारिता आदि गुणों को देखकर राजा ने अपनी देवकी का पाणिग्रहण कर दिया। विवाह के बाद बसुदेव को एक कोटि सहित गोकुल का नायक नंद को भेंट कर दिया।

यह विवाह उत्सव चल रहा था तभी कंस का छोटा भाई साधु बना अतिमुक्तक पारणा निमित्त आया। इसी समय कंस पत्नि जीवयशा अति मद्यपान

से उन्मत्त बनी नृत्य करती थी। अपने देवर मुनि अति मुक्ति को कहा—हे देवर ! आप समय पर उपस्थित हुए। आईए हम दोनों नृत्य करें, उद्यम करें, झोली, पातरा, उपकरण सभी एक ओर रखें। ऐसा अवसर बारंबार नहीं मिलता। ऐसा सुनकर मुनि अतिमुक्ति ने कहा—हे जीवयशा ! क्यों ऐसे आराम में मस्त बनती है तेरा और तेरे पति का वध तो जिसका अभी विवाह हुआ है उसी देवकी के पुत्र से होने वाला है। जीवयशा का अपना तथा अपने पति के मरण की बात सुनकर नशा उतर गया और गुप्तता के साथ यह वृत्तान्त कंस को सुनाया। कंस ने भी यह वृत्तान्त सुनने के बाद वह भी वसुदेव के साथ मथुरा गया और उनके साथ ऊपर से मित्रता का संबंध जोड़ा।

एक दिन अत्यन्त प्रीति होने से कहा—हे वसुदेव आज मुझे एक देव ने कहा है कि सात आठ साल में आपकी शीघ्र मृत्यु होगी। तब मैंने पूछा यह उपद्रव कैसे दूर हो सके ? तब देव ने कहा—यदि तू वसुदेव की पत्नि के सात बच्चों को तेरे गुप्तघर में पालन-पोषण करे तो तेरी मृत्यु नहीं होगी। ऐसा सुनकर मित्रता के संबन्ध से दोनों ने यह बात अंगीकार कर ली। कंस तो उसके बच्चों को ले जाकर शिला पर

ऊपर से नीचे डालता था लेकिन जैसे ऊपर उछाला कि हरिणगमैषो देव उसे झेल लेते थे और उसकी जगह भद्दिलपुर के नागश्रेष्ठो की धर्म पत्नि सुलसा के मृत पुत्रों को रख देता था और देवकी के लड़कों को वहां नागश्रेष्ठी के घर पर रख देता था। उन छः पुत्रों का नाम—अनीकयश, नभसेन, वर्जितसेन, निहतारि, देवयश और शत्रुसेन था।

अब देवकी का सातवां गर्भ तो बहुत ही प्रभावक था जिससे सिंह, सूर्य, अग्नि, गज, ध्वज, सरोवर और विमान ऐसे सात स्वप्नों से सूचित इस बच्चे को मैं नहीं दूंगो कारण कि मैंने अभी तक एक भी बच्चे का पालन पोषण किया नहीं है। अतः और कोई उपाय से प्रतिज्ञा पालन कर देना। यह सुनकर वसुदेव ने गोकुल के नंद ग्वाल की स्त्री यशोदा के पुत्र को कंस के सुपुर्द किया और अपने पुत्र को यशोदा के वहां भेज दिया। देवकी विविध त्यौंहार उत्सवों का बहाना बनाकर अपने पुत्र को देखने, पालन-पोषण करने जाती रहती थी यह उत्सव आज भी प्रसिद्ध है (यह पूरा वृत्तान्त नेमि चरित्र में से जान लेना विस्तार भय से नहीं दिया है।)

एक बार नेमिनाथ प्रभू के पास धर्म देशना सुनकर सम्यक्त्व के साथ बारह व्रत याने श्रावक धर्म को स्वीकार किया और निरतिचार रीति से पालनकर महासती देवकी स्वर्ग में गई वहां से च्यवकर मनुष्यभव प्राप्त कर कर्म क्षय कर मुक्ति जायेगी......

❃

❀ "कठिनाइयां हमें आत्मज्ञान कराती हैं और बताती हैं कि हम किस मिट्टी के बने हैं।" —नेहरू

❀ "जीवन केवल काटने के लिए ही नहीं अपितु महान बनने के लिए है।" —मार्शल

❀ "अंधानुकरण से आत्म-विश्वास की बजाय आत्म संकोच होता है।" —अरविंद

द्रौपदी

द्रौपदी के समान शुद्ध शीयल पालने वाले की आपत्ति दूर होती है और देवता भी उसका सानिध्य करता है ।

पंचाल देश का विभूषण समान कपिलपुर नामक शोभायमान नगर है । वहां द्रुपद नामका राजा राज्य करता था । न्यायनिष्ठ होने से प्रजा को अतिप्रिय था । उसके एक पुत्री थी जिसका नाम द्रौपदी था। वय से बढ़ने लगी ऐसे धर्म-कर्म, शास्त्रादि में उसकी प्रवीणता बढ़ने लगी ।

चिंतकों ने कहा है—जिसने प्रथम अवस्था में विद्या संचय किया नहीं । द्वितीय अवस्था में धन का संचय किया नहीं और तृतीय अवस्था में धर्म का उपार्जन किया नहीं तो चतुर्थ अवस्था में क्या करेगा ? रूप और यौवन से संपन्न हो, उत्तम कुल में जन्म धारण किया हो लेकिन विद्या की प्राप्ति नहीं की हो तो सुगंध विहीन किंशुक के पुष्प के समान शोभायमान नहीं होता है ।

यौवन के आंगन में आयी अपनी पुत्री को देखकर द्रुपद राजा तो चिंता के सागर में डूब गया कि मेरी पुत्री को योग्य वर प्राप्त होगा या नहीं ?

राजा ने एक उपाय बनाया कि जो राधावेध साधेगा। उसके साथ पुत्रि का लग्न होगा। इसी निर्णय के साथ प्रत्येक देशों के प्रत्येक राजा को आमंत्रण भेजा। अनेक राजा उपस्थित हुये।

मंडप बनाया बीच में एक बड़ा स्तम्भ और स्तम्भ के ऊपर एक सोलह आरा का चक्र लगाया। उसके ऊपर एक पुतली लगाई। नीचे तेल से भरी एक कड़ाई रखी जिसमें पुतली का प्रतिबिंब पड़ता था। जो राजा नीचे तेल की कढ़ाई में नजर डालकर ऊपर रखी हुई पुतली की बायीं आंख को तीर से बींधे उसको द्रौपदी का वर बनने का सौभाग्य प्राप्त होगा। इसे राधावेध कहा जाता है। अनेक राजा राधावेध के लिये उपस्थित हुये लेकिन कोई नहीं बींध सका। अंत में अर्जुन ने राधावेध साध लिया। इसीकारण से द्रौपदी ने अर्जुन के कंठ में वरमाला डाली लेकिन आश्चर्य यह वरमाला अर्जुन के जो चार भाई थे उनके कंठ में भी दिखाई दी। अब क्या करना ? राजा विचार में पड़ गया इतने

में वहां एक चारण-श्रमण आया। सर्व राजा महा-राजाओं ने उनके पावन चरणों में नमस्कार किया बाद में धर्मोपदेश श्रवण किया। तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने पूछा कि मेरी पुत्री द्रोपदी ने अर्जुन के कंठ में वरमाला डाली और उनके चार भाईयों के गले में भी वरमाला कैसे आयी और अभी क्या होगा ? तभी चारण-श्रमण ने कहा कि—उसका पूर्व भव का कर्म उदय में आया है। पूर्व में चंपापुरी नगरी में सोमदेव, सोमभूति और सोम दत्त नामके तीन ब्राह्मण भाई रहते थे। अनुक्रम से नागश्री, रतिभूति और यज्ञश्री नामक स्त्री अपनी-अपनी बारी के अनुसार रसोई बनाती थी। एक बार बारी के अनुसार रसोई बनाने का कार्य नागश्री ने प्रारम्भ किया और बढ़िया तुंबड़ी का शाक बनाया। उसने ज्ञान से सोचा तो शाक कड़ुवा था। अभी क्या करना बाहर डालेंगे तो लोग मेरे लिए क्या बोलेंगे ? और इसमें द्रव्यों का उपयोग भी अच्छा किया है। एक बर्तन में निकालकर रक्खा। दूसरा शाक बनाकर पूरे कुटुम्ब को खिलाया। इतने में धर्म लाभ का आशीर्वाद देते हुए गोचरी निमित्त धर्मघोषसूरि के शिष्य धर्मरुचि पधारे। महान् तपस्वी थे, मासक्षमण का पारणा था। मुनिद्वेषी नागश्री ने वह कट शाक पूरा उन्हें बोहरा दिया।

शिष्य गोचरी लेकर वापस आया। तूंबड़ी का ग्राहार देकर कहा यह अति कटुक और प्राणहारक है अतः निरवद्य भूमि में जाकर परठवदो। आज्ञा को स्वीकार कर शिष्य परठने बाहर उद्यान में गये। वहां एक बिंदु नीचे गिर गयो और वहां इकट्ठी हुई चींटियां मर गई। मैं यदि यह तूंबड़ी का शाक परठ दूंगा तो बहुत ही जीवों की हत्या होगी। इसके बजाय यदि मैं उपयोग में ले लूंगा तो कदाचित् मेरा प्राण त्याग होगा, लेकिन हजारों जीवों की दया पलेगी न। अहाहा मरकर बचाने की महान् करुणा! महान् परोपकारी ने तुरन्त ही उसे खा लिया और उसने शुद्ध संयम साधक पंचपरमेष्ठी के ध्यान में मस्त मृत्यु पाकर सर्वार्थसिद्धि विमान में गया। धन्य है उनकी मृत्यु मंगलमय और महोत्सवमय बन गयी। धर्मरुचि वापस आया नहीं। देर लगी जानकर गुरुदेव ने अन्य को खोज करने भेजा जो धर्मरुचि को मृत देखकर उनके उपकरण लेकर आये। देखकर गुरुदेव ने कहा—वह तो कल्याण साध गया। सर्वार्थसिद्धि में गया, कृत-कृत्य हो गये।

नागश्री ने किया हुआ दुष्कृत्य आलोचना लिये बिना मरण पाकर छठे नरक में गई। फिर मत्स्य बनी। फिर सातवीं नरक में और मत्स्य। पुनः

नारकी इसी तरह परिभ्रमण करती-करती गिरी नदी के न्याय से अंत में नागश्री का जीव चंपानगरी में सागरदत्त श्रेष्ठी की सुभद्रा नामक पत्नि की कुक्षि से पुत्री के रूप में अवतरित हुआ और उसका नाम सुकुमारिका रखा। वयवृद्धि पाती हुई नगर के जिनदत्त श्रेष्ठी के सागर नामक पुत्र के साथ लग्न किया और अपने घर में घर जँवाई के रूप में रखा।

रात्रि में सागर सुकुमारिका के साथ शैया में सोया हुआ था, सुकुमारिका का स्पर्श होते ही स्पर्श खेर के अंगारे के समान लगा, जिससे वह रात्रि में सुकुमारिका को सोती हुई छोड़कर चला गया। जब माता-पिता ने पुत्री के रुदन का कारण जाना तो पिता ने कहा—हे पुत्री ! रुदन न कर। राजा हो या रंक कर्म के बंधन से छूटता नहीं। तूने पूर्व भव में किसी का बियोग करवाया होगा इसीलिये इस जन्म में ऐसा हुआ है, तत्पश्चात् सागरदत्त ने जिनदत्त के पास जाकर सभी वृत्तान्त सुनाया। तभी जिनदत्त ने अपने पुत्र से कहा—हे पुत्र ! तूने जिस नारी के साथ लग्न किया है उस नारी का त्याग करना तेरे जैसे उत्तम पुरुष को योग्य नहीं है। सुगुण हो या निर्गुण एक बार लग्न करने के बाद त्यागना शोभा नहीं देता। देख उस शिव ने चन्द्रमा को

ग्रहण किया और वह कलंक वाला है तो भी त्याग करता नहीं इसलिए तू भी तेरी प्रिया को जल्दी स्वीकार करले। तू कुलीन है अतः माता-पिता के वचनों को स्वीकार करना चाहिये।

सागर ने अपने पिता से कहा—हे तात् ! आप कहें तो मैं अग्नि में प्रवेश कर सकता हूँ लेकिन इस स्त्री के साथ रहना मुश्किल है। इस स्त्री का स्पर्श अंगारे के समान दाहक है इसलिये मैंने त्याग दी है। सागरदत्त अपने घर आकर कहने लगा—हे पुत्री ! तुझे वह मन से भी चाहता नहीं है तो फिर स्पर्श करने की तो बात ही क्या है ? इसलिये कुलीन विनीत और हित कारक स्वामी लाऊंगा। इस बात का दुःख मन में नहीं लाना।

सागरदत्त निर्धन पुरुषों को ला लाकर रखते हैं लेकिन सभी भाग जाते हैं। एक भिक्षुक आया उसको स्नान करवाकर अच्छे कपड़े पहनाये, खिलाया तथा रात को सुकुमारिका के साथ सुलाया लेकिन वह भी अपनी भिक्षा की झोली लेकर रात को भाग गया। अहाहा ! कर्म विपाक कैसा दुःखदायी है। भिक्षा मांगना पसंद करता है लेकिन उस स्त्री के साथ रहना अच्छा नहीं

लगता। हे पुत्री ! तू रुदन न कर। तूने कर्म को बांधा है वही भोग रही है। मन को शांत कर, देख जैसे सूर्य को परिभ्रमण करना पड़ता है। गुणीजनों को भी भिक्षार्थ परिभ्रमण करना पड़ता है। पर्वत के शिखर पर, सागर को लांघकर पाताल में प्रवेश करें तो भी कर्म छूटने वाला नहीं है।

कर्म छेदने के निमित्त दानकर, तपकर आत्मा को शांतकर। पिता का बचन सुनकर सुकुमारिका जैन धर्म पालन करने लगी। एक साध्वीजी महाराज भिक्षा निमित्त पधारे। शुद्ध आहार पानी से भक्ति की। बाद में साध्वीजी महाराज के निमित्त से दीक्षा लेने का भाव हुआ और दीक्षा ली। अपने पूर्वोपार्जित कर्म छेदने के लिए दुष्कर तप प्रारम्भ किया।

एक दिन अपनी गुरुणी को कहने लगी मैंने पूर्व भव में बहुत ही कर्म बन्धन किया है। अतः मुझे जोरदार अति उग्र साधना-आतपना करनी है अतः आप मुझे अनुज्ञा दीजिये तो मनुष्य रहित दूर से दूर प्रदेश में जाकर छट्ठ-अट्ठम आदि कर सूर्य के सामने दृष्टि रखकर एकाग्र मन से आतपना लूं। हे वत्स ! बाहर उद्यान में जाकर आतपना लेना। साध्वियों के लिए कोई भी प्रकार से उपयुक्त नहीं है प्रवर्ती ने कहा।

सुकुमारिका ने यह बात सुनी अनसुनी कर कहने लगी मैं तो बाहर उद्यान में जाकर आतपना लूंगी इसलिये आदेश कीजिये। आग्रह कर आदेश लेकर सुकुमारिका उद्यान में गई और आतपना लेने लगी। एक दिन आतपना ले रही थी उसी समय एक वेश्या आयी और उसके साथ में पांच पुरुष थे।

एक पुरुष ने अंक में शिर रखा था।
द्वितीय पुरुष ने शिर पर बेणी बांधी।
तृतीय पुरुष पंखा ढुलने लगा।
चतुर्थ पुरुष मस्तक पर छत्र ढ़ल रहा था।
पंचम पुरुष सेवाकर विश्राम कर रहा था।

इसीप्रकार सुकुमारिका ने विचार किया कि यह स्त्री कितनी भाग्यशाली है, धन्यशील है, जिसकी पांच पुरुष सेवा करते हैं। ऐसा सोचकर सुकुमारिका ने नियाणा किया कि इसी भव में तो मुझे कोई प्रिय पति मिला नहीं लेकिन आगे के भव में इसी तरह 'पांच पति को मिलाऊं''।

अन्य साध्वियों ने ऐसा नियाणा न करने को कहा। इसप्रकार का निषेध करने पर भी वह नहीं मानीं। उसे अलग उपाश्रय में रखी। वहां आठ मास

संलेखना की । वहां से सौधर्म देवलोक में नौ पल्योपम वाली देवी बनीं । वहां से च्यवकर द्रुपद राजा के घर कपिलपुर में पुत्री रूप में उत्पन्न हुई और उस नियाणा के अनुसार उसी ने अर्जुन के कंठ में माला डाली लेकिन पांचों पांडवों के कंठ में माला आरोपित हुई ।

पुरुष कितना भी बुद्धिशाली हो उसका कुछ नहीं चलता । मनुष्य की बुद्धि कर्म के अनुसार होती है, देव-दैत्य कुछ नहीं कर सकता ।

द्रौपदी का ऐसा वृत्तान्त सुनकर अनेकों ने जैन धर्म स्वीकार किया ।

द्रौपदी पांच पांडवों के साथ शादी कर उनके साथ हस्तिनापुर आयी और पांच पांडवों के साथ जिस दिन जिसकी बारी हो उसके साथ वह भोग भोगती थी । एक दिन द्रौपदी अपना शरीर प्रमाण दर्पण में अपने शरीर को पुनः पुनः देख रही थी । उसी समय नारद ऋषि आये । लेकिन द्रौपदी ने देखा ही नहीं इसलिए उनका सम्मान सत्कार नहीं किया । अतः कुपित हुआ नारद ऋषि धातकीखंड में अपरकंका नगरी में गया । वहां के पद्मोत्तर राजा ने उनका सम्मान सत्कार किया । तत्पश्चात् अभिवादन कर पूछने लगा—

कहां से पधारे ?

पधारने का प्रयोजन क्या है ?

नारद ऋषी ने कहा—मैं हस्तिनापुर गया था, वहां पांडवों की पत्नि द्रौपदी देखी, क्या वह स्त्री है। मानो रूप में रंभा है, नाग-कन्या अप्सरा का भी ऐसा रूप नहीं होगा तो तुम्हारे अन्तःपुर में तो कहां होवे।

पद्मोत्तर राजा का मन हुआ कि किसी देव की आराधना कर द्रौपदी का हरण कर यहां ले आऊँ। वैसा ही किया यहां पर लाया और राजा ने कहा—हे द्रौपदी ! तूं मेरे साथ भोग-भोग यह संपत्ति, राज्य, सुन्दर आभूषण, वस्त्र आदि तेरे ही हैं। मेरी सभी पत्निओं में तू मुख्य बनेगी। इतना ही नहीं सभी काम तेरी इच्छानुसार होगा। इसी प्रकार बहुत प्रकार के प्रलोभन से द्रौपदी महासती अपने शीयल व्रत से जरा भी विचलित नहीं हुई। मन में अल्प भी विकार जागृत नहीं हुआ। वह तो पंचपरमेष्ठी में लीन रहने लगी और तपस्या में निमग्न रहने लगी। छट्ठ-अट्ठम आदि करने लगी।

द्रौपदी के हरण को जानकर पांचों पांडव श्रीकृष्ण के पास आये। श्रीकृष्ण ने भी तलाश की लेकिन

मालूम नहीं होता था। इतने में स्वयं नारद ऋषि वहां पर पधार गये।

श्रीकृष्ण ने कहा—द्रौपदी का हरण हो गया है, आपने कहीं पर देखी है क्या? नारद ऋषि ने कहा हां मैंने देखा है, वह अपरकंका में है।

श्रीकृष्ण ने देव की आराधना की। वह सुस्थित देव प्रसन्न हो गया। पांच पांडव और श्रीकृष्ण छहों जन रथ में बैठ गये। रथ उड़ा और अपरकंका में पहुंचा। पांचों पांडवों ने पद्मोत्तर राजा के साथ युद्ध किया। वे युद्ध में पराजित हुए तभी श्रीकृष्ण रण-संग्राम में उतरे और पद्मोत्तर राजा युद्ध से भाग गया और किला बंदकर अन्दर घुस गया। श्रीकृष्ण ने किले पर चढ़कर नरसिंह रूप धारण किया और पृथ्वी को हिलाने लगे। अनेक घर गिरने लगे। इससे भय पाकर पद्मोत्तर राजा श्रीकृष्ण के चरणों में गिरकर क्षमा मांगने लगा। मैंने पहली धृष्टता यह की कि द्रौपदी का हरण किया और दूसरा आपके साथ युद्ध किया। मुझ पर कृपा कर आप द्रौपदी को स्वीकार करें।

उत्तम पुरुषों का कोप भी जब तक सामने वाला नमन नहीं करता वहां तक रहता है और नमन करते हैं तो सभी कोप चला जाता है।

श्रीकृष्ण ने अपना मूल रूप प्रकट कर दिया। पद्मोत्तर राजा श्रीकृष्ण को राज महल में ले गया वहां पर आदर सत्कार के साथ भोजन करवाया। तत्पश्चात् अन्तःपुर में से द्रौपदी को लाकर समर्पित की।

उसी समय धातकीखंड जिनेश्वर के पास वहां के वासुदेव ने सुना। जंबूद्वीप का वासुदेव कृष्ण यहां पर आया है तभी वह सागर के तीर पर मिलने गये। वहां दोनों वासुदेवों ने शंख बजाया बाद में श्री कृष्ण, पांचों पांडव और द्रौपदी सभी सागर पारकर गंगा नदी के पास आये। पांचों पांडव व द्रौपदी ने नाव में बैठकर गंगा पार करली लेकिन श्रीकृष्ण की परीक्षा के लिये नैया नहीं भेजी। तभी भुजाओं से गंगा नदी पार कर दी लेकिन कुपित हुआ राज्य ले लिया सिर्फ दक्षिण में मथुरा दिया। द्रौपदी को लेकर हर्षित होकर कुंती अपने महल में गयी। दौपदी के मिलने पर पुण्य दान किया। श्रीकृष्ण द्वारिका में गये।

एक बार नेमिनाथ मथुरा में समवसरित हुए। कुन्ती पांच पुत्रों तथा द्रौपदी को लेकर वंदन करने आयी। प्रभू ने धर्मोपदेश दिया—

लोक में, मनुष्यत्व, आर्यक्षेत्र, उत्तमजाति, अच्छा कुल, सुन्दर रूप, निरोगत्व, दीर्घआयुष्य, सन्मति, शास्त्र-श्रवण, शुद्ध संयम यह सभी अति दुर्लभ हैं।

उपदेश श्रवण कर सातों ने समकित मूल बारह व्रत ग्रहण किया। अनुक्रम से पांचों पांडवों ने अपने पुत्र को राज्य सौंप कर अपनी माता कुन्ती तथा द्रौपदी के साथ दीक्षा ग्रहण की। द्रौपदी ने विविध प्रकार की तपश्चर्या की। एक दिन शत्रुंजय गयी। वहां पर अधिक तपश्चर्या की। आयुष्य क्षय कर पंचम देवलोक में गये वहां से च्यव कर अनुक्रम से अन्य भवों में मोक्ष जायेंगे।

हंसना मना है

मुन्ना (दादाजी से)—यदि आपके दोनों कान कट जाए तो क्या होगा?

दादाजी—मैं देख नहीं सकूंगा।

मुन्ना वह कैसे?

दादाजी—कान कट जाने से मैं चश्मा नहीं लगा पाऊंगा।

स्याद्वादाय नमस्तस्मै

कैसी है विचित्रता संसार में ! लोग असत्य का त्याग करते नहीं हैं और सत्य को लेकर परस्पर झगड़ते रहते हैं ।

धार्मिक क्षेत्र में प्रायः सत्य की लड़ाइयां चलती रहती हैं । चूंकि सभी धार्मिक मत अपने आपको सत्य की नींव पर खड़े मानते हैं ।

परन्तु क्या कभी सत्य निरपेक्ष होता है ? जो निरपेक्ष वचन हो, वह सत्य हो सकता है क्या ? नहीं, सत्य सदैव सापेक्ष होता है । एक अपेक्षा से जो बात सत्य होती है, दूसरी अपेक्षा से वो असत्य बन जाती है । पुत्र की अपेक्षा पिता है, परन्तु पत्नी की अपेक्षा वो पिता नहीं होता ।

इस अपेक्षावाद को स्याद्वाद कहते हैं । यदि मनुष्य स्याद्वाद का आश्रय ले तो बाह्य और अन्तर-सभी क्लेशों का अन्त हो जाय ! ऐसे स्याद्वाद को मेरा नमस्कार हो ।

अवश्य मंगवाइये ! घर की शोभा बढाईये !!

सन्तानों में संस्कार और सदाचार की सौरभ प्रसारित करें।

आशीर्वाददाता-प० पू० कर्नाटककेसरी आचार्यदेव श्री भद्रंकर-सूरीश्वरजी म० तथा पू० उपाध्याय पुण्यविजयजी गणिवर

卐 महासतियों के चरित्र की प्राथमिक श्रेणी प्रकाशित 卐

भाग सं०		मूल्य
1-	महासती सुलसा	1.00
2-	महासती चन्दनबाला तथा मनोरमा	1.00
3-	महासती नर्मदासुन्दरी तथा सीता	1.50
4-	महासती सुभद्रा तथा राजमती	1.50
5-	महासती ऋषीदत्ता	2.00
6-	महासती अंजना आदि पांच महासती	2.00
7-	ब्राह्मी आदि आठ महासती	2.00
8-	धारिणी आदि 17 महासती	2.00

नोट (i) पूर्ण श्रेणी का मूल्य 11 रुपये।

(ii) मनीआर्डर द्वारा निम्न पते से पुस्तकें प्राप्त होंगी।

श्री कपूरचन्द जी जैन

अस्पताल के पास, भायलापुरा

हिण्डौन सिटी–322230

सवाईमाधोपुर (राजस्थान)